eISSN 2581-8996
[Date]
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 3, Issue 01, Jan 2020

मोक्ष के सम्बन्ध में वेद की अवधारणा

[1] डा0 डॉ0 मनीषा कुमारी

[1] संस्कृत विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा बिहार

Received: 12 Jan 2020, Accepted: 19 Jan 2020 ; Published on line: 30 Jan 2020

Abstract

मानव जीवन के लक्ष्य को हमारे ट्टषि, मुनि, दार्शनिक चिन्तको ने मनुष्य स्वभाव के अनुभवों को साक्षात् कर दो स्वरूपों में विभक्त किया है। प्रथम स्वरूप, समस्त संसारस्थ प्राणी इस जीवन को सुखमय बनाने के लिए प्रयत्नशील है अतः ऐहिक सुखाभिलाषा सर्वप्रथम जीवन का लक्ष्य प्रतीत होती है।

द्वितीय रूप मरणोपरान्त अथवा परोक्ष परिणति के विषय में प्रत्येक व्यक्ति चिन्तित, और धर्मिक व सामाजिक परिवेश के अनुसार स्वतः किन्ही स्वर्ग, मोक्ष आदि लोकों की कल्पना से अभिभूत है। अतः पश्चाद्भावी स्वजीवन को भी लक्ष्य मानता है। इसी भाव को वैशेषिक दर्शनकार कणाद मुनि ने इन शब्दों में अभिव्यक्ति दी है। ऐहिक सुख को 'अभ्युदय' और पारलौकिक आनन्द को 'निःश्रेयस' नाम दिया।1

परन्तु मनुष्यों के सम्पूर्ण जीवन का लक्ष्य परमतत्त्व, आत्मतत्त्व, अमृततत्त्व, अमृतमय लोक, स्वर्ग नाक आदि शब्दों से अभिहित लोक की प्राप्ति ही अभीष्ट है। बृहदारण्यकोपनिषद् में आत्मतत्त्व अथवा परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार ही जीवन का लक्ष्य माना गया है।

संकेत शब्दः मानव जीवन,मोक्ष का सम्बन्ध, वैदिक अवधारणा, सुखाभिलाषा

परिचयः दर्शनों में भी अप्रत्यक्ष लक्ष्य की ही ओर संकेत किया गया है। न्याय दर्शन मोक्ष को 'अपवर्ग' नाम से कहता है। सांख्य शास्त्रा में इसी तत्त्व को अत्यन्त पुरुषार्थ कहा है। योग के 'कैवल्य' अभिधन से अभिहित किया है।2

अथर्वदेव के ग्यारहवें काण्ड में जीवन के लक्ष्य के रूप में नाक, स्वर्ग, देवयान, ओदन, रूप ब्रह्मा की प्राप्ति, अमृत, सुकृतलोक आदि को प्राप्त करना या उपभोग्य बनाना ही मनुष्य का चरम लक्ष्य है। मन्त्रों में जहाँ उत्तम लोक की प्राप्ति लक्ष्य निर्धरित है वहां प्राप्ति का उपाय भी वर्णित किया है।

नाक का अर्थ है जिसमें आनन्दभाव कभी भी न हो। कम सुखम्, न कम इति अकम् न अकम् यत्रा इति नाक अर्थात् सुखाभाव का अभाव, व सुख स्वरूप तथा सुखाभाव का अभाव रूप अतिशय सुख, निरन्तर सुखावस्थिति ही नाक है।

अगले मन्त्रा के अनुसार जिसको स्वर्ग लोक कहते हैं वह उफर्ध्व नाक ही है। इसका वर्णन प्राप्त्युपाय सहित निर्दिष्ट है।

''समानजन्मा समस्त पुरुषों के साथ बढ़, बड़े पराक्रम के लिए इनको तैयार कर, तांप संताप रहित सर्वोपरि विद्यमान अतिशय सुख के शिखर पर चढ़, जिसको लोग स्वर्ग नाम से कहते है।3

इसके अनुसार अकेले व्यक्ति को उन्नति के पथ पर आरोहण नहीं करना चाहिए, प्रत्युत अपने समान पुरुषों को भी साथ में लेकर उन्नत होना चाहिए, उन्हें 'मोक्ष' जो कि बड़े प्रयत्न से प्राप्तव्य होने के कारण बड़ा पराक्रम चाहता है उस पराक्रम के लिए भी तैयार करना चाहिए। वेद में स्वर्ग और नाक में अभेद दिखाया गया है। जिसे लोग स्वर्ग कहते है, वह नाम तुम्हें प्राप्त हो। अर्थात् यह सामान्य स्वर्ग से उच्च स्थिति है क्योंकि स्वर्ग भोग कर पुनर्जन्म प्राप्ति आवश्यक है।

एक अन्य मन्त्रा में भी नाकरूप उत्तम स्थिति की प्राप्ति की प्रेरणा दी गई है।

परिश्रम करने वाले, अतिथि सेवा के लिए ओदन पकाने वाले, दूध का ड्डावण करने वाले को, हे परमेश्वर! तू जान, इसे सुख प्राप्त कराने वाले मार्ग पर अध्रिूढ़ कर जिस मार्ग से जो उत्कृष्ट जीवन है उसको प्राप्त कर। सर्वोत्तम परमशक्ति रूप दुःख के स्पर्श से रहित विशेषतया रक्षक परमेश्वर तक यह रोहण करे।4

परमेश्वर से कहा गया है कि उक्त गुणयुक्त पुरुष को तू प्राप्त हो अथवा अपने उत्कृष्ट परम लोक को प्राप्त कर जहाँ कि दुःख के स्पर्श से रहित आनन्दमय स्वरूप में सदा स्थित और सात रश्मियों वाले सूर्य में अध्ष्ठिातृ रूप में स्थित यजनीय संगतियोग्य तथा आत्मसमर्पण योग्य परमेश्वर को तदनन्तर हम प्राप्त हों।

विद्वान् सत्कर्मो का संचय करेगा और सत्कर्मो के अनुकूल चलकर देवयान पथों का अवलम्बन करेगा, तो अन्य जन भी तदनुरूप सत्कर्मी हो जायेंगे तथा परमेश्वर को प्राप्त करने की प्रेरणा करेंगे।

एक अन्य मन्त्रा में भी ऐसे ही गुणी विद्वानों के अनुसरण की प्रेरणा दी गई है—

'दिव्यगुणी लोग जिस ज्योति द्वारा द्युलोक या शिरस्थ सहड्डारचक्र पर चढ़े हैं, ब्रह्म के प्रसादन के लिए वेदवेत्ताओं और ब्रह्मज्ञों को देय ओदन को अथवा ब्रह्मरूपी ओदन को जीवन में परिपक्व करके

eISSN 2581-8996
[Date]
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 3, Issue 01, Jan 2020

सुकर्मियों द्वारा प्रापणीय सहस्त्रार चक्र रूप लोक को या ब्राह्मी आलोक को प्राप्त हुए हैं, उस ज्योति द्वारा सुकर्मियों के इस लोक को हम प्राप्त हों अर्थात् स्वः पर आरोहण करके, हृदय में परमेश्वर का दर्शन करके उत्तम नाक की ओर हम जायें या उसे प्राप्त करें।'5

आध्यात्मिकार्थ में ''द्यौः''6 या ''दिव''7 सिर या मूर्ध तथा ज्ञान प्रकाश के वाचक हैं। 'ब्रह्मरूपी' ओदन इस अर्थ में ब्रह्म को 'सुकृतस्य लोकम्' कहना यथार्थ प्रतीत होता है और मन्त्रा के उत्तरार्ध में 'सुकृतस्य लोकम्' और 'उत्तमं नाकम्' एकाभिप्रायवाची प्रतीत होता है।

यहाँ ब्रह्मोदन को पकाकर नाक अर्थात् मोक्ष या ब्रह्म को प्राप्त करने का कथन हुआ है। ब्रह्मज्ञों तथा वेदज्ञों को पकाया ओदन देने मात्रा से मोक्ष या ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव प्रतीत नहीं होती। इसलिये ब्रह्म प्रसादनार्थ या ब्रह्मार्पण करके यह भावना अन्तर्निहित है। इस भावनानुसार ब्रह्मज्ञों और वेदज्ञों को दिया गया ओदन योगशास्त्रोक्त 'क्रियायोग' का अंग हो जाता है। अर्थात् उससे 'ईश्वर–प्रणिधन' हो जाता है।

सब क्रियाओं का परमगुरु परमेश्वर के प्रति अर्पण, अथवा उन कर्मो के पफल की अभिलाषा न करते हुए, उन्हें करना। इससे समाध् िकी प्राप्ति होती है तथा पंचक्लेश सूक्ष्म पड़ जाते हैं। ईश्वर के प्रति जिसने अपने सब भावों को अर्पित कर दिया है। उसे समाधिद्धिस हो जाती है। इस प्रकार 'ब्रह्मौदनं पक्त्वा' में ब्रह्म के प्रसादनार्थ इस भावना को अन्तर्निहित माना जाये तो यज्ञ नामक ब्रह्म की प्राप्ति भी सम्भव हो जाती है तथा नाक अर्थात् मोक्ष की भी सिद्धिहो जाती है।

एक स्थान पर प्राण को ही परमेश्वर मानकर बताया गया है कि प्राण रूप परमेश्वर हम मनुष्यों के अन्दर दिव्य रूप में प्रतिष्ठित होता है। अन्दर प्रविष्ट उसे लोग उपहारों से सत्कृत करते हैं। वस्तुतः आन्तरिक यज्ञ यही है–

'हे प्राण रूप परमेश्वर। जो तेरे इस स्वरूप को जानता है और जिसमें तू परमेश्वर रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है, उसके लिए सब मनुष्य उस उत्तम लोक के उद्देश्य से भेंटें प्रदान करते हैं।'8 इसमें परमेश्वर–ज्ञानी के सर्वपूज्य होने का उल्लेख है।

जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्राण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग है। योगांगों में प्राणायाम भी एक अंग है जो कि उत्तरोत्तर सोपान की एक सोपना है। जिसमें प्राणयाम मोक्ष की सिद्धि में अथवा परमात्मा की प्राप्ति में सहायक है। इसलिये आगामी मन्त्रा में आते–जाते, ठहरते हुए प्राण को नमस्कार कहा है–

'हे प्राण! आते हुए तुझे नमस्कार हो, परे जाते हुए तुझे नमस्कार हो, स्थिर होते हुए नमस्कार हो तथा बैठे हुए तुझे नमस्कार हो।'9

प्राण के बिना शरीर की अवस्थिति भी सम्भव नहीं और शरीर के बिना धर्म, कर्म मोक्ष की सिद्धि परमात्मा की प्राप्ति आदि समस्त शुभाशुभ कर्म असम्भव है। प्राणापान अर्थात् श्वासोच्छ्वास में नासिक द्वारा प्राण पफेपफड़ों के भीतर जाता तथा भीतर से बाहर आता है। प्राणायाम की विधि के द्वारा उपासक शनैः शनै स्थिरता को प्राप्त करता है अर्थात् श्वासोच्छ्वास की गति में विच्छेद अर्थात् कालिक

अभाव हो जाता है, और कालान्तर के अभ्यास द्वारा पूर्ण गति विच्छेद हो जाता है। इन दो गतिविच्छेदों को अल्पकालिक और दीर्घकालिक कुम्भक कह सकते है।

आयते = पूरक, = रेचक, तिष्ठते = आभ्यान्तर कुम्भक, आसीनाय = सम्भवतः बाह्य कुम्भक ।10

अल्पकाल और क्रमशः अध्किाध्कि काल तक चित्त की स्थिरता के अनुसार परमेश्वर का दर्शन भी अल्पाध्कि काल तक होने लगता है।

प्राण द्वारा जीवन को धरण करते हुए सत्यवादी होना चाहिए। सत्यवादी होने के लिए सर्वप्रथम अपने विचारों को सत्ययुक्त करना होगा जो मन में हो वही वाणी में और जो वाणी में हो वही कर्म में। सच्चा सत्यवादी तो वही है और ऐसे सत्यवादी को प्राण उत्तम लोक की प्राप्ति कराता है।

प्राण निश्चय से सत्यवादी को उत्तम लोक में स्थापित कराता है।

यहाँ स्पष्ट ही प्राण साधरण श्वास रूप प्राण नहीं है, अपितु यह परमसत्ता का वाचक है। प्राण को माता के गर्भ के जल से उपमित कर कहा है कि प्राण भी मेरे से दूर तथा अपरिचित न हो। मैं तुझे अपने से बांध्ता हूँ।

हे प्राण! मुझ से परांगमुख न हो, मुझसे पराया अर्थात् परिचित तू न होगा जीने के लिए, जैसे माता गर्भाशय के जल सम्बन्धी गर्भ को सुरक्षित रूप में बांध रखती है, वैसे जीने के लिए, हे प्राण तुझे अपने में सुरक्षित रूप में मैं बान्ध्ता हूँ।11

व्यक्ति प्राण के प्रति कहता है कि तू मुझसे अपरिचित न होना, मेरे साथ सदैव संयुक्त रहना। मन्त्रा में परमेश्वर के प्रति भी व्यक्ति इसी भावना को प्रकट करता है। परमेश्वर को धरणा ध्यान आदि उपायों द्वारा उपासक अपने साथ बान्ध्ने का संकल्प करता है। जिससे लक्ष्य की पूर्ति करने में समर्थ हो सके।

ब्रह्मचारी ही सबसे जेष्ठ परमेश्वर को प्राप्त कर सकता है।

उस ब्रह्मचारी से सबसे ज्येष्ट परमेश्वर, और वेद ज्ञान प्रकट होता है, तथा ब्रह्मचारी की सब दिव्यशक्तियाँ अमृत अमर परमेश्वर के साथ मिल जाती है, परमेश्वरीय कार्यों के अनुरूप हो जाती है।12

ब्रह्मचारी समस्त कर्मो को करने में समर्थ तथा अमृत का कारण वेद माता रूपी अर्थात् ज्ञान के अन्दर गर्भीभूत होकर मोक्षरूपी लक्ष्य प्राप्त करता है।

वेद विद्या को कर्त्तव्य कर्म को, लोक ज्ञान को प्रजाओं के पति गृहस्थी तथा राजा के कर्त्तव्यों को देदीप्यमान परमोच्च स्थिति वाले परमेश्वर को प्रकट करता हुआ, इनके यथार्थ स्वरूपों का कथन करता हुआ अमृत होने की योनि अर्थात् कारण13 में गर्भीभूत होकर इन्द्र पदवी को पाकर आसुर विचारों का तथा आसुर कर्मों का विनाश करता है।14

ब्रह्मचर्य के तप से ब्रह्मचारी अमृत अर्थात् अपवर्ग की योनि अर्थात् वेदज्ञान रूपी माता के गर्भ में वास कर उस ज्ञान के दुग्न का पान कर व्यक्ति अमृत हो जाता है, जन्म मरण की परम्परा से दीर्घकाल के लिए मुक्ति पा लेता है।

ब्रह्मचर्य और तपश्चर्या के द्वारा दिव्य कोटि के विद्वान् मृत्यु को समाप्त करते हैं अर्थात् उस पर विजय पाते हैं, जन्म मरण से चिरकाल तक मुक्ति पाते हैं। इन्द्र पदवी वाला व्यक्ति भी ब्रह्मचर्य के कारण इन देवों के लिए मुक्ति के सुख को दर्शाता है।

निष्कर्ष– इस प्रकार वेद ज्ञान के महासागर हैं तथा विश्व वाघ्मय की अमूल्यनिधि एवं भारतीय आर्यसंस्कृति के मूल आधार हैं। उनमें राष्ट्रीयता की उदात्त भावना का भरपूर समावेश है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. यतो{भ्युदय निःश्रेयस्सि(स ध्र्मः। – जैúसूú– 1.1
2. योग सूú – 2.55.
3. अथर्वú संú– 11.1.7
4. अथर्व संú– 11.1.30
5. अथर्व संú– 11.1.37
6. शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत। – यजुú संú– 31.13.
7. दिव्यं यश्चक्रे मूर्धनम्। – अथर्व संú– 10.7.32
8. अथर्व संú– 11.4.18.
9. अथर्व संú– 11.4.7.
10. अथर्व संú– 11.4.11
11. अथर्व संú– 11.4.26
12. अथर्व संú– 11.5.5
13. शास्त्रायोनित्वात् – वेúसूú– 1.1.3.
14. अथर्व संú– 11.5.7